महर्षि दधीच की शिवभक्ति

दधीच(अथवा दधीचि) का नाम उपमन्यु तथा शुक्राचार्य जैसे प्रमुख शिवभक्तों के साथ लिया जाता है। इनकी दानशीलता का इतिहास में कोई मुकाबला नहीं है क्योंकि इन्होंने लोकहित[1] के लिये अपनी हड्डियोंतक का दान कर दिया था। इन्हीं के शाप के कारण दक्ष-यज्ञ का विनाश हुआ तथा उस समय विष्णु आदि देवताओं को वीरभद्र से पराजय का मुख देखना पड़ा।

किसी समय देवराज इन्द्र ने प्रतिज्ञा कर ली थी कि 'जो कोई अश्विनीकुमारों को ब्रह्मविद्या का उपदेश करेगा, उसका मस्तक मैं वज्र से काट डालूँगा।' वैद्य होने के कारण अश्विनीकुमारों को देवराज हीन मानते थे। अश्विनीकुमारों ने महर्षि दधीच से ब्रह्मविद्या का उपदेश करने की प्रार्थना की। एक जिज्ञासु अधिकारी प्रार्थना करे तो उसे किसी भय या लोभवश उपदेश न देना धर्म नहीं है। अत: महर्षि ने उपदेश देना स्वीकार कर लिया। अश्विनीकुमारों ने ऋषि का मस्तक काटकर औषध द्वारा सुरक्षित करके अलग रख दिया और उनके सिर पर घोड़े का मस्तक लगा दिया। इसी घोड़े के मस्तक से उन्होंने ब्रह्मविद्या का उपदेश किया। इन्द्र ने वज्र से जब ऋषि का वह मस्तक काट दिया, तब अश्विनीकुमारों ने उनका पहला सिर उनके धड़ से लगाकर उन्हें जीवित कर दिया। इस प्रकार ब्रह्म-पुत्र अथर्वा ऋषि के पुत्र दधीच घोड़े का सिर लगने के कारण अश्वशिरा भी कहे जाते हैं।

प्राचीन काल में क्षुव नाम के एक तेजस्वी राजा थे। वे दधीच मुनि के मित्र थे। एक बार उन दोनों में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर विवाद हो गया। दधीच कहते कि ब्राह्मण श्रेष्ठ है जबकि क्षुव कहते कि राजा श्रेष्ठ होता है। इस विवाद में दधीच ने कुपित होकर क्षुव के मस्तक पर मुक्के से प्रहार किया। प्रतिक्रिया में क्षुव ने दधीच को वज्र से काट डाला। दधीच ने गिरते समय शुक्राचार्य का स्मरण किया। शुक्राचार्य ने उन्हें उपनी मृतसंजीवनी विद्या द्वारा पूर्ववत् बना दिया। तदनन्तर दधीच ने शुक्राचार्य से भगवान् शिव के महामृत्युंजय मन्त्र का उपदेश प्राप्त कर(उसकी साधना से) शिव को प्रसन्न किया तथा उनका दर्शन पाया। भगवान् शिव ने उन्हें वर माँगने को कहा।

भगवान् शिव के द्वारा वर माँगने की बात सुनकर दधीच ने तीन वर माँगे- (1) मेरी हड्डी वज्र हो जाय, (2) मैं अवध्य हो जाऊँ तथा (3) मैं सर्वत्र अदीन रहूँ अर्थात् मुझमें कभी दीनता न आये। भगवान् शिव ने दधीच को ये तीनों ही वर दे दिये।

महादेवजी से उपर्युक्त वरों को पाकर दधीच ने राजा क्षुव के सिर पर भरी सभा में अपने पैर से प्रहार किया। क्षुव ने क्रोध में भरकर उनपर वज्र से प्रहार किया। परन्तु वह वज्र दधीच का नाश न

---

1. वृत्रासुर को मारने लिये एक ऐसे शस्त्र की जरूरत थी जिसे विशेष प्रकार का वज्र कहा जाता है जो इन्द्र का आयुध है। इस वज्र का निर्माण दधीच की हड्डियों से ही हो सकता था क्योंकि शिव के वरदान से वे वज्र हो गयीं थीं। देवताओं द्वारा याचना किये जाने पर उन्होंने अपनी हड्डियों का सहर्ष दान कर दिया। उन्होंने योग द्वारा अपने प्राण छोड़ दिये ओर उनकी हड्डियों को ले जाकर वज्र आदि अस्त्रों का निर्माण किया गया।

कर सका। क्षुव ने यह देखकर उपासना द्वारा भगवान् विष्णु को प्रसन्न किया। श्रीहरि के दर्शन देने पर उसने दधीच से अपमानित होनेवाली कहानी सुनायी। दधीच की अवध्यता का समाचार जानकर श्रीहरि ने महादेवजी के प्रभाव का स्मरण किया, फिर वे क्षुव से बोले कि मैं तुम्हारे साथ रहकर कुछ नहीं करना चाहता। मैं अकेला ही तुम्हारे लिये दधीच को जीतने का प्रयत्न करूँगा।

भक्तवत्सल होने के कारण भगवान् विष्णु क्षुव का हित साधन करने के लिये ब्राह्मण का रूप धारण कर दधीच के आश्रम पर गये। वहाँ पर वे दधीच को प्रणाम कर बोले कि मैं आपसे एक वर चाहता हूँ। आप मुझे उसे अवश्य प्रदान करें। इतना सुनकर दधीच ने विष्णु भगवान् को पहचानते हुए कहा कि आप अपनी माया को छोड़कर अपने पूर्व स्वरूप में हो जायँ। आप क्षुव का कार्य साधने के लिये आये हैं। दधीच की बातें सुनकर विष्णुजी ने कहा कि यह सत्य है कि तुम शिव-आराधना से निर्भय एवं सर्वज्ञ हो, फिर भी तुम मेरे कहने से एक बार राजा क्षुव से जाकर कह दो कि "राजेन्द्र मैं तुमसे डरता हूँ।"

दधीच विष्णु की बात न मानकर यह कहने लगे कि मैं कहीं भी, कभी भी और किसी से भी किंचिन्मात्र नहीं डरता-सदा ही निर्भय रहता हूँ। इस पर श्रीहरि ने मुनि को दबाने की चेष्टा की। देवताओं ने भी उनका साथ दिया; किन्तु सबके सभी प्रकार के अस्त्र कुण्ठित हो गये।

जब भगवान् विष्णु ने उन पर पुनः कोप करना चाहा तो उसी समय ब्रह्माजी के साथ राजा क्षुव वहाँ आ पहुँचे। ब्रह्माजी ने विष्णुजी तथा अन्य देवताओं को क्रोध करने से रोका। बह्माजी की बात सुनकर उन लोगों ने दधीच को पराजित करने का विचार त्याग दिया। इसके बाद श्रीहरि ने दधीच को प्रणाम किया तथा क्षुव भी अत्यन्त दीन हो मुनि को प्रणाम कर कृपा करने के लिये प्रार्थना करने लगे। दधीच ने क्षुव की प्रार्थना से उन पर अनुग्रह किया। परन्तु श्रीविष्णु आदि देवों को शाप देने लगे। उन्होंने कहा कि इन्द्रसहित देवताओं और मुनीश्वरो! तुमलोग रुद्र की क्रोधाग्नि से श्रीविष्णु तथा अपने गणों सहित पराजित एवं ध्वस्त हो जाओ। देवताओं को इस तरह शाप दे क्षुव की ओर देखकर दधीच ने कहा- "राजेन्द्र! ब्राह्मण ही बली और प्रभावशाली होते हैं राजा नहीं।" तब क्षुव दधीच को नमस्कार कर वापस घर आ गये तथा देवगण भी अपने-अपने धाम को पधारे। देवताओं की बुद्धि दधीच के शाप के कारण ही विकृत हो गयी थी इसी कारण वे देवाधिदेव शिव को न बुलाये जाने पर भी वे दक्ष के यज्ञ में भाग लेने के लिये आ गये और इसका विरोध भी नहीं किया। फलस्वरूप वे सब-के-सब रुद्र की क्रोधाग्नि से उत्पन्न वीरभद्र द्वारा पराजित एवं अपमानित हुए।[1]

महर्षि दधीच की भक्ति इतनी दृढ़ थी कि भगवान् शिव ने स्वयं उनके घर पिप्पलाद के रूप

1. उपर्युक्त कथा गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित संक्षिप्त शिवपुराण, रुद्रसंहिता-सतीखण्ड अध्याय 38 एवं 39 पर आधारित है। यही कथा लगभग इसी रूप में लिंगपुराण-पूर्वार्द्ध अध्याय-35 एवं 36 तथा अन्य पुराणों में पायी जाती है।

में जन्म लिया। वृत्रासुर के वध के लिये ब्रह्माजी ने देवताओं को उपाय बताते हुए कहा कि दधीच मुनि ने पूर्वकाल में शिवजी की आराधना करके वज्र-सरीखी अस्थियाँ हो जाने का वर प्राप्त किया है। अत: उनकी अस्थियों से वज्रदण्ड का निर्माण करके वृत्रासुर को मारा जा सकता है। ब्रह्मा का वचन सुनकर इन्द्रादि देवता दधीच के आश्रम पर गये। दधीच ने उनके अभिप्राय को जान अपनी पत्नी सुवर्चा को आश्रम से बाहर कहीं पर भेज दिया। तत्पश्चात् उन्होंने इन्द्र को अपनी हड्डियाँ दे दीं। उन हड्डियों से वज्र आदि शस्त्रों का निर्माण किया गया, जिनके सहारे इन्द्र ने वृत्रासुर पर विजय पायी।

इधर जब सुवर्चा ने अपने पति का सारा हाल देखा तो इन्द्रादि देवताओं को पशु होने का शाप दिया तथा स्वयं सती होने का निर्णय किया। परन्तु उसी समय आकाशवाणी हुई कि सुवर्चे तुम्हें सती नहीं होना चाहिये क्योंकि तुम गर्भवती हो। पुत्र उत्पन्न होने के बाद तुम जैसा चाहो वैसा करो। सुवर्चा को पतिलोक जाने की जल्दी थी, अत: उसने शीघ्र ही पत्थर[1] से अपने उदर को विदार्ण कर डाला। तब उसके पेट से मुनिवर दधीच का गर्भ बाहर निकल आया। वह गर्भ साक्षात् रुद्र का अवतार था जो अपने तेज से प्रकाशित हो रहा था। सुवर्चा ने दिव्यस्वरूपधारी अपने उस पुत्र को रुद्र का अवतार समझ कर उसकी स्तुति की तथा पतिलोक जाने की आज्ञा माँगी। सुवर्चा ने अपने पुत्र से कहा कि तुम इस अश्वत्थ वृक्ष के निकट चिरकालतक स्थित रहो तथा समस्त प्राणियों के लिये सुखदाता होओ।

सुवर्चा के पतिलोक चले जाने पर इन्द्रसहित समस्त देवता उस बालक के पास शीघ्रता से आ पहुँचे तथा महोत्सव मनाकर वापस चले गये। ब्रह्माजी ने उसका नाम पिप्पलाद रखा। रुद्रावतार पिप्पलाद उसी अश्वत्थ के नीचे लोकों की हित कामना के लिये चिरकालिक तप में प्रवृत्त हुए। तदनन्तर पिप्पलाद ने राजा अनरण्य की कन्या पद्मा से विवाह करके अपने ही समान तेजस्वी एवं तपस्वी दस पुत्रों को पैदा किया। उन्होंने संसार में अनेक प्रकार की लीलाएँ की। उन कृपालु ने जगत् में शनैश्चर की पीड़ा को देखकर लोगों को यह वरदान दिया कि "जन्म से लेकर सोलह वर्षतक की आयुवाले मनुष्यों को तथा शिवभक्तों को शनि की पीड़ा नहीं हो सकती। यदि शनि मेरे वचन का अनादर करेगा तो वह भस्म हो जायगा।" इसीलिये शनैश्चर विकृत होने पर भी वैसे मनुष्यों को कभी पीड़ा नहीं पहुँचाता।

(कथा का उपर्युक्त अंश गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित संक्षिप्त शिवपुराण के शतरुद्रसंहिता अध्याय 23-24 पर आधारित है।)

❁❁❁❁❁❁

1. यहाँ 'पत्थर' का अर्थ 'पत्थर के बने ब्लेड' लेना चाहिये। प्रागैतिहासिक काल में भी पत्थर के ब्लेडों का प्रयोग होता था। पुरातत्त्ववेत्ताओं ने ऐसे ब्लेडों को अपनी खुदाई से प्राप्त किये हैं। लेखक ने भी संग्रहालयों में ऐसे ब्लेडों को देखा है।